औपनिवेशिकता : आधुनिकता की सीमित प्रक्रिया

–राकेश कुमार शर्मा,
सहायक प्रोफेसर, इतिहास, राजकीय महाविद्यालय, नारायणगढ़

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापार करते हुए शक्तिशाली हुई और भारत में व्यापारिक एकाधिकार स्थापित करने के बाद राजनीति की स्थिति में आ गई। शासक बन गई और पूरे भारत पर अधिकार करने की दिशा में बढ़ने लगी। बडे शासकों को पराजित करने के बाद निचले स्तर के शासक वर्ग –राजाओं, राणाओं, जमींदारों, चौधरियों आदि ने ब्रिटिश सर्वोचता स्वीकार कर ली। यह भारत की अधीनता थी। इससे पहले भी भारत में बडे–बड़े राज्य उभरे थे परन्तु यह एक भिन्न प्रकार का राज्य था जिसे हम औपनिवेशिक व्यवस्था कहते है। इस राज्य को प्रशासित करने के लिये नयी आवश्यकताएं पैदा हुई जिससे नई शैक्षिक, प्रशासनिक, न्यायिक प्रणालियां आकार लेने लगी और आकार में बढ़ने लगी। इनका स्वरुप नौकरशाही–सैनिक था। ये न तो राजतांत्रिक था और न लोकतांत्रिक। इन सभी का जन्म औपनिवेशिक ढांचे की कोख से हुआ था इसलिए औपनिवेशिकता इनकी रगों मे बह रही थी। औपनिवेशिक गुणों को समेटे इन सब का उद्देश्य औपनिवेशिकता को सहारा देना था। यह व्यवस्था हर क्षेत्र में अपनी जडे जमाने लगी। इस के भारत की अर्थ व्यवस्था, समाज, राज्यतंत्र पर बहुपक्षीय परिणाम रहे। भारत के एकीकरण के लिए एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया आरम्भ हुई। एक राष्ट्र की भावना उत्पन्न हुई। भारतीयों व ब्रिटिश हितों में टकराव पैदा हुआ जिसके परिणाम स्वरुप एक बहुआयामी राष्ट्रीय आन्दोलन पैदा हुआ।

कम्पनी शासन को कुशल व व्यवस्थित रुप लार्ड कार्नवालिस के समय शुरु हुआ। जब सिविल, पुलिस, न्याय व लगान संबंधित प्रशासन को संगठित व नियमित किया जाना शुरु हुआ । इसकी स्थापना लार्ड कार्नावालिस के समय 1785 ई. में हुई थी। कंपनी ने अपने सभी ऊंचे पद ब्रिटिश लोगों के लिए आरक्षित रखे हुए थे। अधिकारियों को अच्छा वेतन, उन्नति के अवसर, पैशन की सुविधा दी गई थी। इस नौकरशाही के स्वरुप में ही राजनीतिक अधिकार सम्मिलित थे। इस लिए भारतीय नौकरशाही उद्ध योग्यता के लोगों को आकर्षित करने में कामयाब हुई। इसका परिणाम एक तो यह निकला की भारतीय कुलिन राजनीतिक मंच से हटना शुरु हो गये। ब्रिटिश लोग ही जज, लगान अधिकारी, बनने लगे। पाश्रात्य जीवन पद्धति पर आधारित नया कूलीन वर्ग उभरना शुरु हो गया। 1853 ई. में परीक्षा पद्धति शुरु करने से पूर्व कम्पनी सारी नियुक्तियां संरक्षण (patronage) व्यवस्था के अनुसार करती थी। 1806 ई. में हेलिसवरी में भारत में नियुक्त होने वाले अधिकारियों के लिए ट्रैनिंग देनी शुरु की गई। 1829 ई. में सारे ब्रिटिश साम्राज्य को जिलों में बांटा गया और एक ब्रिटिश अधिकारी को दीवानी, फौजदारी व न्यायिक शक्तियों के साथ जिलें का प्रशासक नियुक्त किया गया। जो अपने क्षेत्र में तानाशाह था। यह व्यवस्था ब्रिटिश प्रशासन के अन्त तक बनी रही। इनमें भारतीयों को भूमिका देने की

आवश्यकता महसूस हुई। इस व्यवस्था में नयी योग्यता निर्धारित हुई जिसमें अंग्रेजी भाषा का ज्ञान, नई प्रशासनिक प्रक्रियाओं की समझदारी, ब्रिटिश व भारतीय समाज का जानकारी आदि। इसलिये ब्रिटेन में ब्रिटिश अधिकारियों के लिए ट्रैनिंग कोर्स जिसमें भारत की जानकारी दी जाती थी व 1844 ई. में भारत के लोगों को शिक्षित करने के लिए पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था शुरु की गई। शिक्षा का जन्म व उद्देश्य औपनिवेशिक व्यवस्था को मजबूती देना था। इन लोगों को पाठयक्रम में वही पढाया जाना शुरु हुआ जो यूरोपियन लोगों का भारत के बारे में दृष्टिकोण था। इस व्यवस्था में उपयोगितावादी सिद्धान्तों को अपनाया गया था। ब्रिटिश शासकों की नीति –मुक्त प्रतिस्पर्धा, अहस्तक्षेप और स्वच्छता के सिद्धान्त पर शासन किया। उन्हीं लोगों को रोजगार दिया जाना शुरु हुआ जो पश्चिमी शिक्षा प्राप्त थे। पढने का नया मतलब निकला जो आज भी प्रचलित है यानि पढने का मतलब नौकरी । शुरु में भारतीयों को नौकरी में लेने के लिए योग्यता की परीक्षा नहीं होती थी। ये नये प्रकार की नौकरियां थी। ये पश्रिमी शिक्षा प्राप्त लोग व नौकरी प्राप्त लोग भारत में मध्यम वर्ग में शामिल होते चले गये। चूंकि यह वर्ग शक्ति, नौकरी प्राप्त करके, ब्रिटिश शासन से नजदीकी, व शिक्षा आदि साधनों से सम्पन्न था। यह मध्यम वर्ग ब्रिटिश सरकार के सामने प्रतिनिधित्व करने के साथ–साथ भारतीय समाज का नेतृत्व करने वाला बन गया। नौकरी प्राप्त करने के लिये व पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त करने के लिये होड लग गई। मध्यम वर्ग का अनुकरण करना फैशन बन गया जैसे ये सोचते थे उसकी सहमती प्राप्त होना आसान हो गया।

इस प्रक्रिया से गुजरते हुए भारतीय मध्यम वर्ग के लिए पहचान का प्रश्न विशेष रुप से महत्वपूर्ण है। जो औपनिवेशिक युग से पैदा होने के कारण उसके गुणों को धारण किये हुए था। मध्यम वर्ग औपनिवेशिक प्रक्रिया का परिणाम था और औपनिवेशिक सांस्कृतिक क्रान्ति का वाहक भी था।

प्रक्रिया के दौरान इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति संभव हो गई। यह विश्व पूंजीवाद के ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया का परिणाम थी। भारतीय अर्थव्यवस्था का संबंध विश्व की सबसे अग्रणी अर्थव्यवस्था के साथ स्थापित हुआ परिणाम स्वरुप भारत का व्यापार मात्रात्मक व गुणात्मक रुप से बढा। ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति के पूरक के रुप में भारत एक विस्तृत बाजार व मण्डी के रुप में विकसित होने लगा। भारत में एक नये प्रकार की अर्थव्यवस्था उभरी जिसे हम औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था भी कहते है। भारत में उपनिवेशवाद व ब्रिटेन में औद्योगिक पूंजीवाद दोनों आधुनिक घटना है– वास्तव में दोनों साथ–साथ पूरकता के संबंधों में विकसित हुई। जे.ए. कर्नवेल के अनुसार, "*आधुनिक भारत का विकास आधुनिक यूरोप के साथ हुआ।*" भारत का विश्व पूंजीवाद के साथ धीरे–2 एकीकरण हुआ। इस प्रक्रिया के परिणाम स्वरुप भारत ने आधुनिक काल और पूंजीवाद के प्रभावों को महसूस किया गया।

इस प्रक्रिया के भारत के आर्थिक जीवन पर विनाशकारी प्रभाव पड़े। पारम्परिक आर्थिक ढांचे ढह गये। इसके साथ–साथ इस व्यवस्था को न्याय संगत ठहरा कर इसको सहारा देने वाले विचार भी उत्पन्न होने लगे। ये प्रक्रिया उसी क्षण शुरु हो चुकी थी जब कम्पनी ने भारतीय राज व्यवस्था से स्वायत्ता व खुद नेतृत्व प्राप्त कर लिया था। एक नई प्रणाली को लागू कर दिया था। अब उसी अनुरुप

संकल्पनाएं व विचारात्मक हथियारों का विकास होने लगा। एक अस्वभाविक व्यवस्था आरोपित की गई जो कि पश्रिमी अवधारणाओं व संस्थाओं की स्थापना करने लगी। इन की हार्दिक सराहना उन लोगों द्वारा की गई है जो पिछले सौ बर्षों से इस परिवर्तन की प्रक्रिया में है। यहां से औपनिवेशिक सांस्कृतिक क्रान्ति के विचार बातचीत, अफवाहों, विचार–विमर्श आदि द्वारा आम लोगों में फैलने लगे और आम–समझ का हिस्सा बनने लगे। इन्होंने भावी राजनीतिक प्रक्रिया व धाराओं को निर्धारित किया। भारत में उभरने वाले सामाजिक व धार्मिक सुधार आन्दोलन, जातिवादी, साम्प्रदायिक व राष्ट्रवादी आन्दोलनों को वैचारिक आधार व नेतृत्व इन्हीं विचारों ने दिया। जिससे ये स्थाई रुप से अपनी जड़े जमाने में कामयाव हो गये।

वर्तमान भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उपनिवेशवाद है। हमें इसकी भूमिका की अनदेखी नहीं करनी चाहिए क्योंकि आधुनिक भारत में प्रचलित विचार व सिद्धान्तों का जन्म उसी काल में हुआ है।

औपनिवेशिक शासन एक ऐतिहासिक व विलक्षण घटना है। इसमें भारत का एक उत्पीडित राष्ट्र के रुप में विकास हुआ। वास्तव में यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें कम्पनी जो राज्य पर नियंत्रण रखने वाला समूह थी। जिसकी प्राथमिकता भारतीय जनता की समस्या को हल करना व उसे समृद्ध करना नहीं था बल्कि इंग्लैंड के लोगों की समस्याएं उसके केन्द्र में थी। इसमें सीमितता एक प्रमुख प्रवृति थी। यह उसकी मुख्य विशेषता थी। नौकरियों, शिक्षा, नागरिक सुविधाओ को उपलब्धता, लोगों के लोकतांत्रिक अधिकारों को सीमितता या उन्हें बांध कर रखने के कारण नये सामाजिक प्रश्न उभरे। इस संघर्ष में शिक्षा के प्रचार व प्रसार के तरीके शामिल नहीं थे, बल्कि उपलब्ध संसाधनों पर अधिकार का संघर्ष उभरा।

औपनिवेशिक प्रक्रिया के परिणाम स्वरुप उत्पन्न राज्य ने एक सर्वोच्च स्थिति प्राप्त की थी । इस दौरान विचारात्मक ढांचों का जो विकास हुआ वह विकृत पूंजीवादी औपनिवेशिक व्यवस्था में पैदा हुए थे। इस दौरान चुनाव व्यवस्था भी एक राजनीतिक प्रक्रिया के रुप में उपस्थित हुई। जिसने महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रभाव डाले। ब्रिटिश शासन की कार्य प्रणाली इस प्रकार की रही कि उसने जातिवादी व साम्प्रदायिक राजनीति करने वालों पर अपनी सर्वोचता कायम रखी। एक तरह से औपनिवेशिकता प्रणाली इनका जन्म स्थान बन गई। बौद्धिक सम्पदा का विकास ही इस प्रकार हुआ। बौद्धिक विचारों की रुप–सज्जा नये राज्य द्वारा प्रभावशाली ढंग से की गई।

ब्रिटिश प्रशासन, जो उपनिवेशिक नौकरशाही स्वरुप का था। भारतीय सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम नहीं था। विविधताओं व बिभिन्नताओ से पूर्ण भारतीय समाज की मजबूरियां के परिणामस्वरुप उसने ऐसी स्थिति जीत ली कि लोग व्यक्तिगत रुप से या सामूहिक रुप से उनसे कृपा मांगते लगे। भारतीय अभिजात वर्ग का स्थान नौकरशाही ने ले लिया। भारतीय अभिजात वर्ग भी ब्रिटिश नौकरशाही को कृपा पर आश्रित हो गया। मध्यकालीन अभिजात वर्ग यूरोप से भी खत्म हुआ था, परन्तु वहां उसका स्थान पर लोकतांत्रिक ढांचों का विकास हुआ था। कहने का अभिप्राय है कि लोकतांत्रिक

विचारों के इर्द–गिर्द लामबंदी के परिणाम स्वरुप अभिजातीय विशेषधिकार खत्म हुए। जिसके परिणामस्वरुप जनता की भूमिका बढ़ी थी। भारत के संदर्भ में ऐसा नहीं हुआ। यहां विशेषाधिकार बंट गये थे। एक तरफ विलक्षण भारतीय अभिजात वर्ग उभरा जो विशेषाधिकारहीन था व दूसरी तरफ ब्रिटिश नौकरशाही जो विशेषाधिकारों व सर्वोचता सहित प्रकट हुए।

देश में जनता और राज्य के वीच दूरियां कम हुई। परिणामस्वरुप यह आवश्यक था कि राजनीतिक संबंधों को विस्तृत किया जाए। लोगों के सामने भी लामवन्द होने की मजबूरी उपस्थित हुई। इसी रुप में नये सिद्धान्त और विचारधाराये जन्म लेने लगी। नये राज्य से संबंध स्थापित करने, उससे अपने हितों को सुरक्षित करने व विरोध की जरुरत महसूस हुई। लोग अपने रिवाजों, विश्वासों, परम्पराओं के साथ इस नये राज्य में शामिल होना शुरु हुए। भारत में पहले ही लगान सामूहिक रुप से लिया जाता था। तत्कलीन सांस्कृतिक व सामाजिक संगठन ही सामूहिक प्रयत्नों में प्रयोग होने लगे। आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त अभी उपलब्ध नहीं थे। पहचान के लिये भाषा, जाति, क्षेत्र, धर्म से काम चलने लगा। धार्मिक व जातिय प्रतिनिधित्व को स्वीकार किया जाने लगा। इससे भारत में धार्मिक व जातिय समुदायों के सिद्धान्त को मान्यता और अप्रत्यक्ष स्वीकृति मिल गई। यह माना गया कि यह भारतीय समाज को संगठित करते थे और इसी आधार राजनीति में भी प्रयोग होने लगा। इसी आधार पर यह भावनाएं संगठित रुप लेने लगी जो एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या भी करने लगी। राष्ट्रवाद के उदय से पहले यह कॉफी विकसित हो चुकी थी। राष्ट्रवादी नेता भी इन्हीं भावनाओं से प्रभावित रहे। जनता को लामवन्द करने के लिए शुरु में यहीं तरीके अपनाये गये। यह राजनीतिक प्रक्रिया के आधारभूत तत्वों के रुप में शामिल हुए।

इसे भारत की सामाजिक भावनाओं ने अपने ढंग से प्रतिक्रिया दी। ऐसे राजनीतिक प्रस्ताव प्रस्तुत हुए जो राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा के विरुद्ध थे। खासकर राष्ट्रीय आन्दोलन की संकट की घडियों में ऐसी मांगे उपस्थित हुई जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर किया।

लामबंदी के तरीके शुरु से ही इस प्रकार के थे कि उनमें आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धान्त कम थे। जिससे जनता की भूमिका जातिय या साम्प्रदायिक आधार पर थी। भारतीय इतिहास की प्रक्रिया ही ऐसी रही कि राष्ट्रवादी विचार शुरु में जातिय व साम्प्रदायिक विचारों के साथ घुल–मिल गये और काफी बाद में अखिल भारतीय स्तर पर कोई संगठन उभरा। परिणामस्वरुप साम्प्रदायिक और जातिवादी अपीलें ज्यादा प्रभावशाली बनी रही।

भारतीय इतिहास, संस्कृति, समाज–व्यवस्था के सिद्धान्त 18वी शताब्दी व 19वी शताब्दी में स्थापित हुए। सिद्धान्तों के उद्‌गम के साथ राजनीतिक मुद्दा हमेशा उपस्थित रहता है । इसलिये इनके प्रतिपादकों की इतिहास दृष्टि में समस्याएं उपस्थित रही है।

प्राचीन भारत के इतिहास का अध्ययन यूरोपिय दृष्टिकोण से किया गया। इस अध्ययन में अधिकतर वे लोग शामिल थे जो ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी में अधिकारियों के रुप में काम कर रहे थे। इनमें विलियम जोन्स, जेम्स मिल, एच.डी, कोलेब्रूक, एच.एच,विल्सन और जेम्स प्रिंसेप्स और वाद में एलैक्जेंडर कनिंघम और विंसेट स्मिथ आदि। इनके द्वारा दी गई व्यख्याओ पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाये गये। इतिहास घटनाओं का वृतान्त भर होता था। धार्मिक ग्रंथों को चुनने का आधार ब्रिटिश अधिकारियों को पसन्द हुआ करता था। उनके द्वारा प्रस्तुत निष्कर्षों को सही मानकर आनेवाले इतिहासकारों व वौद्धिक वर्ग ने कार्य जारी रखा।

इसका परिणाम यह निकला कि औपनिवैशिकता के विचार भारत में आम समझ का हिस्सा बन गए। यह आज भी भारत में जातिवाद, साम्प्रदायिकता व प्रशासनिक निरंकुशता के रूप में उपस्थित हैं।

संदर्भः

1. आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद व राष्ट्रवाद। – विपिन चंद्र
2. आज का भारत – रजनी पाम दत्त
3. इतिहास की पूर्व पीठिका – रोमिला थापर